डी.पी.ई.पी. दुनिया भर में प्राथमिक शिक्षा में सुधार का सबसे बड़ा कार्यक्रम माना जाता है। नई आर्थिक नीति लागू होने के बाद जब विकासशील देशों ने शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए अनुदान के बजाय विश्व बैंक से ऋण लेना स्वीकार किया, तो इन देशों में इसी किस्म के कई कार्यक्रम चालू हुए। आर्थिक नीति और शिक्षा नीति के मद्दे नजर इस तरह के कार्यक्रमों की जबरदस्त आलोचनाएं भी हुईं, लेकिन कम से कम डी.पी.ई.पी. के उदाहरण से यह कहा जा सकता है कि इसका कुछ तो सकारात्मक असर दिखाई देता है। 2002 में कार्यक्रम का पहला चरण पूरा होने पर इस कार्यक्रम की समीक्षा की गई। केरल राज्य की समीक्षा दिगन्तर ने की। प्रस्तुत है अध्ययन पर एक रिपोर्ट।

डी.पी.ई.पी. (केरल): एक विश्लेषण

❑ ज्योत्स्ना लाल

भूमिका

1994 के अंत में शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए एक और कार्यक्रम शुरू हुआ था। इसका नाम जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) था। डीपीईपी सात राज्यों के बयालीस जिलों में लगभग एक साथ प्रारंभ किया गया था। (फिलहाल यह कार्यक्रम 18 राज्यों के 219 जिलों में लागू है।) डीपीईपी विश्व में प्राथमिक शिक्षा सुधार का सबसे बड़ा कार्यक्रम माना जाता है। इस कार्यक्रम को वित्तीय सहायता विश्व बैंक से मिलता है।

कुछ शिक्षाविद् भारत के संदर्भ में, इसमें एक और बड़ा बदलाव देखते हैं। जैसे प्रोफेसर कृष्ण कुमार अपने लेख में कहते हैं कि अब तक भारत ने शिक्षा के लिए द्विपक्षीय सहायता केवल अनुदान के रूप में ली थी। यह शायद पहला अवसर था जब भारत को प्राथमिक शिक्षा में सुधार और फैलाव के लिए कर्ज लेना स्वीकार किया था।

इस दृष्टि के अनुसार इस बदलाव की शुरूआत जोमतीएन कॉन्फ्रेन्स में शुरू हुई थी। इस कॉन्फ्रेन्स में 'शिक्षा सबके लिए' पर सहमति बनी थी। इसमें भाग ले रही सरकारों ने आर्थिक ढांचे के पुनर्गठन की प्रक्रिया और उसके पीछे की विचारधारा पर सवाल नहीं उठाए, बल्कि इसके मॉडल को आगे बढ़ाने की रणनीति पर विचार किया। ऐसी आर्थिक स्थिति में विकास के लिए ऋण लेने के लिए पर्याप्त स्थान था।

प्रोफेसर कृष्ण कुमार इसी बहस को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि 1991 के आर्थिक संकट से विश्व बैंक को अपने इस तर्क के लिए बल मिला कि विकासशील देशों को शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए भी ऋण लेना चाहिए। प्रोफेसर कृष्ण कुमार के अनुसार, डीपीईपी भारत की अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन प्रक्रिया के भाग के रूप से शुरू हुआ।

यह सही है कि इस आकार और प्रकार के कार्यक्रम के बारे में अनेक मत होंगे और यह भी संभव है कि ये बिल्कुल अलग-अलग लगने वाले मत भी सत्य हों। यह कहना गलत न होगा कि डीपीईपी की उत्पत्ति के बारे में जो भी मतभेद रहे हों, उसमें ऐसे अनेक लोग जुड़े हैं जो वास्तव में अच्छी शिक्षा सब तक पहुंचाना चाहते हैं। यह शायद इसलिए भी संभव हो पाया है कि भारत में शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए ऐसे अनेक प्रयासों की जरूरत है।

बहरहाल, डीपीईपी के आकार और फैलाव को देखते हुए उसे नजरअन्दाज करना असंभव है। मार्च 2002 में डीपीईपी का प्रथम चरण पूरा हुआ और कार्यक्रम की समीक्षा की गई। यह समीक्षा भारत सरकार के मानव विकास मंत्रालय के ब्यूरो ऑफ एलेमेन्टरी एज्यूकेशन द्वारा करवाई गई। इस प्रक्रिया में एडसिल भी शरीक रहा।

समीक्षा सभी सातों राज्यों की करी गई। प्रत्येक राज्य की समीक्षा एक अलग संस्था/समूह ने की थी। केरल में डीपीईपी की समीक्षा दिगन्तर ने की थी।

समीक्षा के मुख्य उद्देश्य कुछ इस प्रकार थे:

- राज्य की शैक्षणिक दृष्टि जो उनके नए शिक्षाक्रम और पाठ्य-पुस्तकों में नजर आती है।
- शिक्षकों के क्षमता सवंर्धन, अकादमिक मदद, अनुश्रवण आदि के लिए किए गए प्रयासों की समीक्षा।
- शिक्षकों की नजर में इन प्रयासों का उनकी क्षमताओं,

प्रो. कृष्ण कुमार व अन्य 'लुकिंग बीयॉन्ड द स्मोकस्क्रीन - डीपीईपी एण्ड प्राईमरी एज्युकेशन इन इण्डिया, Economic and Political weekly, February 17, 2001

अभिवृत्तियों और समझ पर असर
- वर्तमान में कक्षा-कक्ष की गतिविधियां
- बच्चों का गणित और भाषा में सीखने का स्तर

इस अध्ययन के लिए राज्य सरकार के कर्मचारियों, शिक्षकों और बच्चों से बातचीत की गई, कक्षा अवलोकन के साथ बच्चों का स्तर आकलन भी किया गया।

केरल के तीन डीपीईपी जिलों में से मल्लापुरम जिला चुना गया क्योंकि वहां डीपीईपी के अंतर्गत सबसे अधिक स्कूल थे। बाकी दो जिलों में मल्लापुरम के आधे से भी कम स्कूल में डीपीईपी लागू था। मल्लापुरम में से 3 ब्लॉक चुने गये। प्रत्येक ब्लॉक में से एक शिक्षा समिति चुनी गई। उस शिक्षा समिति के अन्तर्गत सभी स्कूलों का भी अध्ययन किया गया।

इस अध्ययन का अधिकतर कार्य केरल से ही चुने गए व्यक्तियों ने किया क्योंकि दिगन्तर के किसी भी व्यक्ति को मलयालम नहीं आती थी। समीक्षा में भाग लेने से पहले सभी स्थानीय कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण किया गया।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस समीक्षा में डीपीईपी का नया शिक्षाक्रम, पाठ्यपुस्तकें, स्कूल, बच्चों का सीखने का स्तर एवं क्षमता-वर्धन और अकादमिक सहायता के ढाँचों को देखा गया। इस लेख में इन सभी विषयों पर अध्ययन में जो पाया गया, वह प्रस्तुत किया गया है।

केरल की शिक्षा के बारे में लिखना बहुत आसान काम नहीं है। उसमें एक बड़ी अड़चन का कारण है उस राज्य के बारे में बहुत कुछ लिखा होना। केरल की शिक्षा यात्रा के बारे में न केवल बहुत कुछ पहले से लिखा हुआ है, बल्कि हमेशा उसकी उपलब्धियों को सराहा भी गया है।

माननीय शिक्षाविदों द्वारा किसी भी प्रयास को लगातार सराहे जाने से या तो लिखने वाले इतने प्रभावित हो जाते हैं, कि उसे सत्य मान कर आगे खोज-बीन नहीं करते या फिर कुछ ज्यादा ही ध्यान से (over-cautious) देखते हैं। हमारे लेखन में भी शायद इसका असर नजर आए। हमने कोशिश यह की है कि तथ्यों को बहुत ध्यान से देखा जाए और कल्पनाशक्ति को लगाम देकर तथ्यों और तर्क पर ही टिका जाए।

शिक्षाक्रम: केरल में जब नया शिक्षाक्रम लागू करने की बात आई तब राज्य में वैसे ही एमएलएल आधारित नया शिक्षाक्रम रचा जा रहा था। डीपीईपी के आने से इस कार्यक्रम को बीच में ही छोड़ दिया गया। 1995-96 में केरल शास्त्र साहित्य परिषद ने डीपीईपी के लिए बच्चों का एक बेसलाईन मूल्यांकन किया। मूल्यांकन का नतीजा निकला कि बच्चों का अकादमिक स्तर काफी कमजोर है। चूंकि नामांकन और ठहराव केरल में पहले से ही मजबूत थे, इसलिए डीपीईपी के लिए अहम मुद्दा बना- बच्चों के अकादमिक स्तर में सुधार। इसके लिए शिक्षाक्रम और पाठ्यपुस्तक दोनों में बदलाव की जरूरत समझी गई। इस समीक्षा के दौरान हमने पुराने और नये शिक्षाक्रम का अध्ययन किया। अध्ययन के आधार थे-' बुनियादी सिद्धांत (Foundational Principles), ढांचा और विषय-वस्तु। बुनियादी सिद्धांत से हमारा तात्पर्य है वे बुनियादी विश्वास (बेसिक बिलीव्स) जिनसे शिक्षाक्रम और पेडागॉजी का चुनाव हुआ है; ढांचा, अर्थात शिक्षाक्रम कैसे व्यवस्थित किया गया है; और विषय-वस्तु, यानि बच्चे द्वारा क्या सीखा जायेगा।

अगर पुराने शिक्षाक्रम को देखें तो वह कोठारी कमीशन की रिपोर्ट से प्रेरित मालूम होता है और वांछनीय समाज की बात करता है। यहां पर ज्यादा बल राष्ट्रीय उद्देश्य पर है। शिक्षाक्रम में इन सिद्धांतों को गणित और सामाजिक अध्ययन के उद्देश्यों को परिभाषित करने में भली-भांति इस्तेमाल किया है। हालांकि इस पर बहुत ज्यादा विस्तार में नहीं लिखा गया है। नए शिक्षाक्रम में उचित शिक्षा की योजना बनाने के क्रम में इंसान और समाज पर गौर करने की जरूरत महसूस नहीं हुई। शिक्षा की नई नीति पर एक लाइन लिखकर बात खत्म कर दी गई है।

बच्चों को जो कुछ भी स्कूल में सिखाना होता है, उसको अलग-अलग श्रेणियों में व्यवस्थित करना होता है। इन श्रेणियों का निर्धारण तथा ज्ञान की व्यवस्था इस पर निर्भर करती है कि ज्ञान के प्रकार और बच्चों के सीखने के बारे में क्या मान्यतायें हैं। पुराने शिक्षाक्रम में योजना बनाते वक्त इन बातों को ध्यान में रखने की झलक महसूस होती है। गणित और सामाजिक अध्ययन के शिक्षाक्रम में यह बखूबी नजर आता है; भाषा में इसकी झलक मिलती है, लेकिन विज्ञान का शिक्षाक्रम बनाते समय इस सोच को दरकिनार कर दिया गया। विज्ञान का पाठ्यक्रम लिखा भी अपर्याप्त तरीके से है। नए शिक्षाक्रम में इंसानी ज्ञान को एक 'बिना सीवन के चोगे' के रूप में देखा गया है। यहां अनुभव और सीखने के फर्क को पहचानने की कोशिश भी नहीं दिखाई देती है।

नए और पुराने दोनों ही शिक्षाक्रमों में सीखने की प्रक्रिया में बच्चे के अनुभव को बल दिया गया है। पुराने शिक्षाक्रम में बच्चे के परिवेश को ध्यान में रखने की बात तो कही गई है, परन्तु विषय-वस्तु निर्धारित करते वक्त इसका उपयोग नजर नहीं आता। नया

पूरी रपट के लिए देखें, एक्टिविटि बेस्ड् टीचइंग इन केरला एण्ड इट्स् अचीवमेन्ट्स् : ए स्ट्डी ऑफ पेडागोजीकल इन्टरवेन्शन्स इन डीपीईपी नवम्बर 2002, दिगन्तर, जयपुर।

शिक्षाक्रम इस विषय पर बहुत संवेदनशील है और विषय-वस्तु चुनने में इसका भली-भांति उपयोग करता है।

अगर हम ढांचे और विषय-वस्तु को देखें तो पुराना शिक्षाक्रम बेहतर रूप से व्यवस्थित प्रतीत होता है। जबकि नया शिक्षाक्रम थोड़ा एडहॉक किस्म से बनाया गया लगता है। थोड़ा ध्यान से देखें तो तीन बिन्दु नजर आते हैं।

अगर शिक्षा के उद्देश्य की दृष्टि से देखें, तो पुराने शिक्षाक्रम में शिक्षा के उद्देश्यों की झलक तो मिलती है, पर स्कूलों में क्या पढ़ाना चाहिए; इसका कुछ पता नहीं चलता, लेकिन नए शिक्षाक्रम में शिक्षा के उद्देश्यों को बिल्कुल भी जरूरी नहीं समझा गया।

पुराने शिक्षाक्रम में विषयों के उद्देश्यों पर भी ध्यान दिया गया है। नए शिक्षाक्रम में इसको नजरअन्दाज तो नहीं किया गया परन्तु उनको कोई खास अहमियत भी नहीं दी गई है और बहुत स्पष्ट रूप से लिखा भी नहीं है। अगर विषय-वस्तु को देखें तो पुराना शिक्षाक्रम ही बेहतर लगता है- गणित में विषय-वस्तु का चयन ध्यान से किया गया लगता है, हालांकि ये थोड़ा भारी जरूर है; सामाजिक विज्ञान का हिस्सा भी ध्यान से लिखा गया है, लेकिन विज्ञान में उसके उद्देश्यों को न केवल दरकिनार कर दिया है, न इसका कोई तर्क या ढांचा शिक्षाक्रम में नजर आता और न ही वहां कोई नया तरीका सुझाया गया है। मूल्यांकन के संदर्भ में दोनों ही शिक्षाक्रमों में व्यापक सुधार की तरफ संकेत हैं, हालांकि उनका विस्तार नहीं किया गया है।

संक्षेप में कहें तो पुराने शिक्षाक्रम में शैक्षणिक योजना बनाने की एक गंभीरता नजर आती थी; हालांकि उसकी अपनी काफी सीमाएं भी थीं। 1996 में नया शिक्षाक्रम बनाया गया तो उसमें बहुत बदलाव की आवश्यकता थी। लेकिन नए शिक्षाक्रम में शिक्षा की दृष्टि तो सीमित है और समाज के बारे में कोई दृष्टि ही नहीं है। इस बात के बारे में भी कोई चर्चा नहीं है कि वांछनीय समाज बनाने के लिए किस प्रकार की शिक्षा की जरूरत है। नया शिक्षाक्रम लगभग पूरी तरह से सहमति बनाने वाली कार्यशालाओं पर निर्भर नजर आता है। पहले के एमएलएल दस्तावेज में क्षमता, दक्षता, योग्यता, मनोवृति और मूल्यों को एक शब्द- योग्यता- में समाहित किया गया था; नया शिक्षाक्रम एक कदम आगे बढ़कर- गतिविधि, योग्यता, अनुभव और सीखने में अंतर को स्पष्ट नहीं करता। ऐसा लगता है कि नया शिक्षाक्रम इस आधार पर तय किया गया लगता है कि कक्षा में क्या-क्या होना चाहिए। बाकी सब कुछ कल्पित और सबको स्वीकार्य कक्षा की छवि के इर्दगिर्द विकसित किया गया है। हालांकि नया शिक्षाक्रम तैयार करने में खूब मेहनत की गई और बच्चे के परिवेश और सीखने के मनोविज्ञान पर भी बहुत ध्यान दिया गया है, पर यह कहना बहुत मुश्किल है कि नया शिक्षाक्रम पुराने शिक्षाक्रम से बेहतर है। बहुत दुख से साथ यही कहना पड़ेगा कि ऐसा लगता है कि केरल में शिक्षाक्रम को बदलते समय संग्रह-त्याग की नीति नहीं अपनाई गई।

दूसरा पक्ष जहां डीपीईपी के अंतर्गत खूब काम हुआ वह है वहां की पुस्तकें। डीपीईपी केरल में प्राथमिक शिक्षा का पैकेज (समुच्चय) तैयार किया गया। इस में मुख्य रूप से पाठ्य-पुस्तकें एवं शिक्षक संदर्शिकाएं हैं। यह दोनों ही पुरानी किताबों से बहुत बेहतर हैं। यह पाठ्य पुस्तकें और शिक्षक संदर्शिका शायद इस कार्यक्रम (Pedagogical renewal efforts) की सबसे बड़ी उपलब्धि हैं।

यह पाठ्य-पुस्तकें बच्चों के साथ एक स्नेही और संवेदनशील संबंध को बढ़ावा देती हैं। सबसे अच्छी बात तो यह है कि ये किताबें ज्ञान की पोटली के रूप में न होकर बच्चों को खोजने के लिए प्रेरित करती हैं। इनमें सीखने में एक-दूसरे की सहायता का स्थान है। इन किताबों से ऐसा प्रतीत होता है कि किताबें सीखने-सिखाने का इकलौता जरिया नहीं, बल्कि और भी कई तरीके हैं। अंत में ये किताबें वाकई दिखने में खूबसूरत, रुचिकर और गतिविधि आधारित हैं।

यद्यपि पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में बहुत मेहनत की गई है फिर भी कुछ कमियां रह गई हैं। जैसे- कई बार उनमें अवधारणात्मक रूप से स्पष्टता नहीं है, उदाहरण के लिए सुझाई गई गतिविधियों में सभी अवधारणात्मक पहलूओं को ध्यान से टटोला नहीं गया है और बहुत कुछ अवसर या बच्चों की रुचि पर छोड़ दिया गया है। इन किताबों में समस्याओं को ज्यादा सटीक तरीके से भी रखा जा सकता था। यह बात पर्यावरण अध्ययन की पुस्तकों में विशेष रूप से नजर आती है।

पर्यावरण अध्ययन सिखाने के प्रति नजरिया कुछ इस प्रकार का है कि बच्चे चूंकि स्वभाव से जिज्ञासु, खेल पसन्द करने वाले और गतिविधियों में रुचि रखने वाले होते हैं और उनकी प्रवृत्ति रचनात्मक होती है; इसलिए वे स्वाभाविक रूप से अवलोकन करना पसंद करेंगे। अवलोकन से बच्चे आंकडे एकत्र करना, उनका वर्गीकरण करना, तुलना करना वगैरह सीखेंगे और इस तरह उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण व समझ का विकास होगा।

ज्ञान निर्माण और प्राप्ति का यह दृष्टिकोण बच्चों के पाठों और उनको दी जाने वाली गतिविधियों दोनों में नजर आता है, क्योंकि अवलोकन को एक गतिविधि के रूप में देखा जाता है जो बच्चों की जिज्ञासा पर आधारित है। समस्या को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने या अवलोकन के बारे में व्यवस्थित रूप से लिखने

की कोशिश नहीं की गई है। अनेक बार ऐसा भी लगा कि यह किताबें बच्चों की दिमागी रूप से परेशान नहीं करतीं।

पाठ्य-पुस्तकों के बाद स्कूलों पर आएं, तो अध्ययन में केरल के स्कूल स्थापित संस्थाओं के रूप में उभर कर आते हैं और उनके कार्य करने में एक स्थायित्व नजर आता है। उनमें सभी मूल-भूत सुविधाएं उपलब्ध हैं। समाज में उन्होंने अपना एक स्थान भी बना लिया है। स्कूलों में बच्चों और शिक्षकों की लगभग 90 प्रतिशत की उपस्थिति नजर आती है। इसका श्रेय डीपीईपी को नहीं दिया जा सकता, क्योंकि केरल में बच्चों का स्कूल जाना रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा है। यह भी नजर आया कि अधिकतर स्कूल बहुत पहले से स्थापित थे और अधिकांश बीस साल या उससे पुराने थे। ज्यादातर स्कूलों में मूल-भूत सुविधाएं जैसे कमरे, पीने का पानी और शौचालय तो मौजूद थे, लेकिन खेलने का मैदान और चाहरदिवारी सब जगह मौजूद नहीं थीं। अधिकांश स्कूलों में कुछ न कुछ खेलने का सामान जरूर था। अगर छात्र-शिक्षक अनुपात देखें, तो वह भी काफी बेहतर 1:29 था। लेकिन यह भी कहना मुश्किल है कि स्कूल हर तरह से संपूर्ण थे; स्कूलों में सहायक शिक्षण सामग्री का अभाव था।

डीपीईपी में क्षमतावर्धन और अकादमिक सहायता के लिए व्यवस्था विकसित करने पर काफी बल दिया गया। इस क्षेत्र में काफी बदलाव नजर आता है। डीपीईपी से पहले केवल जिला शैक्षणिक प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) मौजूद था, जो सेवा-कालीन अकादमिक सहायता करता था। डीपीईपी ने एक महत्वपूर्ण निर्णय यह लिया कि वे राज्य में ही एक मजबूत संदर्भ समूह बनाएंगे और एनसीईआरटी पर निर्भर नहीं रहेंगे। केरल में एक और अच्छी बात यह देखी गई कि डाइट बहुत सक्रिय था, इस अकादमिक सहायता और प्रशिक्षकों का असर कक्षा में भी नजर आ रहा था। हालांकि शिक्षकों के लिए अकादमिक सहयोग की उपलब्धता (स्कूल एवं ब्लॉक स्तर- दोनों पर) में इजाफा हुआ है, लेकिन अब समय है अकादमिक सहायता की गुणवत्ता पर ध्यान देने का। शिक्षा के उद्देश्य; विकास में शिक्षा की भूमिका; क्या पढ़ाने योग्य है; शिक्षाक्रम में व्यवस्था लाना; या फिर कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों के पीछे औचित्य जैसे विषयों पर काम करने की आवश्यकता है। डीपीईपी के कार्यकर्ता से बात करके ऐसा भी लगा कि प्रशिक्षण की गुणवत्ता देखने के लिए एक प्रकोष्ठ बनाने की जरूरत है।

अकादमिक सहायता का एक बहुत बड़ा पहलू शिक्षकों का प्रशिक्षण है। केरल के संदर्भ में एक बहुत बड़ी उपलब्धि यह है कि प्रशिक्षण की पहुंच बहुत व्यापक है। शिक्षण प्रशिक्षण प्रणाली को मजबूत करने में डाइट, शिक्षा विभाग और पंचायत के प्रतिनिधियों का योगदान रहा है। किंगिनिकुट्टम* और उसका यह बल कि समस्या स्कूल स्तर पर निपटाई जाए भी काफी कारगर साबित हुआ है। लेकिन शिक्षण प्रशिक्षण में भी कुछ ऐसे पहलू हैं जहां पर बहुत कम ध्यान दिया गया है; जैसे प्रशिक्षण का मुख्य केन्द्र 'गतिविधि आधारित शिक्षण' इससे शिक्षण विधि के सुधार के कई अन्य पहलू छूट जाते हैं। शायद यही कारण है कि केरल में 'अच्छी शिक्षा पद्धति' को 'गतिविधि आधारित शिक्षा पद्धति' का पर्याय माना जाता है।

शिक्षक प्रशिक्षण में एक और बेहतरी यह हुई है कि व्याख्यान विधा के बदले सहभागी और अनुभव आधारित प्रशिक्षण प्रणाली इस्तेमाल होने लगी है। इससे एक दिक्कत यह जरूर हुई कि बहस की दिशा उस तरफ जाती है जहां प्रशिक्षक ले जाना चाहता है। इससे गहन-विश्लेषण का स्थान कम ही रह जाता है।

शिक्षण सामग्री और रपटों में सीखने के तरीके, सीखने के स्वाभाविक तरीके आदि पर तो बहुत सामग्री है, लेकिन सीखना क्या है- या कौन सा तरीका स्वाभाविक है या उसके पीछे तर्क क्या है; जैसे विषयों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। ज्ञान, शिक्षा एवं समाज में शिक्षा की प्रासंगिकता जैसे विषयों पर भी शिक्षण सामग्री मौन है। लेकिन सारा दोष डीपीईपी के माथे नहीं मढ़ा जा सकता, क्योंकि देश की अन्य कार्यशालाएं भी इसी प्रकार से की जाती हैं।

इस अध्ययन में शिक्षकों से बातचीत पर विशेष महत्व दिया गया था। उनसे बातचीत में सहायता के लिए एक व्यापक प्रश्नवाली भी बनाई थी। अध्ययन में यह निकल कर आया कि केरल में सभी शिक्षक प्रशिक्षित थे, परन्तु सबकी शिक्षा स्नातक स्तर की हो, यह जरूरी नहीं था। अगर कक्षा के लिए तैयारी, बच्चों का कार्य जांचना, गृहकार्य जांचना एक जिम्मेदार/समर्पित शिक्षक के सूचक हैं, तो अध्ययन के अंर्तगत अधिकतर शिक्षक ऐसे ही पाए गए।

डीपीईपी के अंतर्गत पाठ्य-पुस्तकों के प्रकार में काफी बदलाव आया, लेकिन इसका असर दिए गए गृहकार्य के प्रकार पर नजर नहीं आया। सामान्यत: दिये गये गृहकार्यों में किताब के सवाल हल करना या प्रश्नोत्तर करना ही बताया जाता रहा।

डीपीईपी का एक काफी जोर पढ़ाने के तरीकों, खासतौर पर गतिविधि आधारित तरीकों पर था। लेकिन इसका असर कक्षा में न तो नजर आया और न ही शिक्षकों ने बताया कि वे कक्षा में गतिविधियां करवाते हैं। उन्होंने बताया कि कक्षा में उनका अधिकतर

---

* किंगिनिकुट्टम एक गतिविधि आधारित प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिए तैयार कार्यक्रम था जो अपनी तरह का एक अनूठा प्रयोग था।

समय पाठ में से सवाल पूछने, गणित के सवाल हल करने और बच्चों से बारी-बारी से पढ़वाने में जाता है। शिक्षा पद्धति में कुछ नयी गतिविधियां भी जुड़ी हैं। जैसे- छोटी परियोजना कार्य, चित्र बनाना, चीजें एकत्रित करना, डायरी लेखन इत्यादि। ऐसा लगा कि ये गतिविधियां- जहां बच्चे स्वतंत्र रूप से काम करते है- जल्दी अपनाई जाती हैं और जहां शिक्षकों को पहल करनी होती है, वहां इनको अपनाने में देरी होती है।

शिक्षकों ने यह भी बताया कि वे बच्चों से अन्य विषयों पर भी बातचीत करते रहते हैं। बच्चों को अनुशासित रखने के तरीकों में भी अंतर आया है। अब डांटने-धमकाने के बदले शिक्षक रुचिकर गतिविधियां करवाना ज्यादा पसंद करते हैं।

मूल्यांकन के तरीकों में भी अंतर आया है, हालाँकि पुरानी परीक्षा पद्धति पूरी तरह से गायब नहीं हुई। अब बच्चों में परीक्षाओं का पहले जैसा डर नहीं है।

समेकित रूप से देखें तो शिक्षक के पढ़ाने के तरीके बदले हैं और इसलिए कक्षा में फर्क आया है। मुख्य अन्तर तो पाठ्य-पुस्तकों के इस्तेमाल में दिखाई देता है। मूल सिद्धांत समझ कर उसे लागू कर पाने की समझ अभी दूर है।

अन्त में बच्चों का अकादमिक स्तर भी जांचा गया। अकादमिक स्तर भाषा और गणित में देखा गया। यह देखा गया कि बच्चों का अकादमिक स्तर भाषा में गणित से बेहतर था। अध्ययन से दो बातें उभर कर आईं। पहली, बच्चों के अकादमिक स्तर में बहुत भिन्नता है- एक स्कूल के अंदर भी, एक ब्लॉक के अंदर भी, और दूसरी, दोनों ही विषयों में जैसे-जैसे प्रश्नों का स्तर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे बच्चों का अकादमिक स्तर घटता जाता है। उदाहरण के तौर पर बच्चों को शब्दों को पढ़ना लिखना बहुत अच्छे से आता है; परन्तु जब नई विषय-वस्तु (Text) को पढ़कर और समझकर उत्तर लिखने होते हैं, तो लगभग तीन-चौथाई बच्चों को परेशानी होती है। उसी तरह गणित में बच्चों को अंकों और नम्बर सिस्टम की अच्छी पहचान है और चार मौलिक संक्रियाओं के सवाल भी कर लेते हैं; परन्तु जब संक्रियाओं की एप्लीकेशन और भिन्न जैसी अवधारणाओं की बारी आई तो लगभग दो-तिहाई या उससे भी ज्यादा बच्चों को सवाल हल करने में कठिनाई हुई।

ऐसा लगता है कि जिन दक्षताओं को बच्चे पहले सीखते हैं और जिनमें उन्हें अधिक अभ्यास हो जाता है, उन्हें वहां आसानी होती है। जिन सवालों में सोचना और कोई समस्या हल करनी थी, वहां बच्चों से ज्यादा कठिनाई आई।

और अंत में:

देखा जाये तो डीपीईपी केरल को कई उपलब्धियों का श्रेय जाता है। केरल में प्रशिक्षण की अच्छी व्यवस्था बनाई गई है। इन प्रशिक्षणों को संबल देने के लिए कई आंतरिक अकादमिक मिशन भी थे। डायट भी डीपीईपी को पूरी तरह मदद कर रहा है। अकादमिक सहायता के लिए ब्लॉक और संकुल स्तर पर डीपीईपी की एक और बड़ी उपलब्धता है, कार्यक्रम के अंर्तगत बनी पाठ्य-पुस्तकें और शिक्षक संदर्शिकाएं। डीपीईपी शैक्षणिक मुद्दे और अच्छी शिक्षा में जागृत कर पाया है।

इस सबके बावजूद, कई ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर सुधार की गुंजाइश है। हालाँकि शिक्षक प्रशिक्षण और अकादमिक सहायता पर खूब काम हुआ, लेकिन इसका असर कक्षा में स्पष्ट नजर नहीं आता। कक्षा-कक्ष में बदलाव जरूर नजर आता है लेकिन यह कहना कि उनमें सुधार है, यह मुश्किल है। यह बहुत अहम मुद्दा है और इस पर केरल में काम करने वाले लोगों को इस पर और गहन विश्लेषण की जरूरत है।

शिक्षाक्रम को भी दोबारा देखने की आवश्यकता है, खासतौर पर शिक्षा के उद्देश्यों, विषयों के पुनर्गठन की दृष्टि से।

शिक्षा पद्धति को भी अगले चरण तक ले जाने की जरूरत है। बाल केन्द्रित और गतिविधि आधारित शिक्षा की जरूरत तो स्थापित हो चुकी है; अब जरूरत है सही मायनों में शिक्षण पद्धति के ओर बढ़ने की, जिसमें सीखा हुआ, छात्र के व्यवहार में नजर आए।

कक्षा में गतिविधि और शिक्षा के उद्देश्यों के बीच की अवधारणात्मक कड़ी पर जोर देने की जरूरत है। शिक्षक और शिक्षक प्रशिक्षक इन मुद्दों पर अधिक ध्यान दें तो जो अब तक की तैयारी हुई है, उसका ज्यादा फायदा होगा। डायट इस कार्य में पहल कर सकते हैं। डायट के व्याख्याताओं के एक समूह को इस तरह के कार्य के लिए विशेष रूप से तैयार किया जा सकता है, जो एक सुगठित सैद्धांतिक प्रारूप तैयार कर सकें। केरल के शिक्षक इस तरह के शिक्षण के लिए बेहतर रूप से तैयार हैं। शिक्षक संदर्शिकाओं में भी विवरणात्मक सोच के बदले विश्लेषणात्मक सोच की तरफ बढ़ने की जरूरत है।

हमें लगता है कि केरल में बेहतर शिक्षण के लिए अच्छी नींव तैयार हो चुकी है। अब जरूरत है आगे कदम बढ़ाने की। ◆